सिख धर्म के मूल सिद्धान्तों की संक्षिप्त रूपरेखा

मनुष्य जाति के सुधार के लिए जो बीज रूप नानक देव जी ने बोये और उनके उत्तराधिकारी गुरु साहिबान ने जिन्हें सींचा, वे गुरु गोबिंद सिंह जी के समय फलीभूत हुए और खालसा की स्थापना के रूप में शिखर पर पहुँचे। जिस तेग(तलवार) से खालसे का गौरवमयी तेज, प्रताप की राह की ओर उन्मुख हुआ, उसे निःसंदेह गुरु गोबिंद सिंह जी ने घड़ा था, पर इसका फौलाद गुरु नानक देव जी ने दिया था। **गुरु नानक देव जी का आरंभ किया कार्यक्रम अपने अन्तिम शिखर तक तब पहुँचा, जब दसवें गुरु नानक जी (गुरु गोबिंद सिंह जी) ने "गुरु नानक जोति" का आदि ग्रंथ, सर्वोत्तम धार्मिक ग्रंथ, में प्रवेश किया और इसे 'गुरु ग्रंथ साहिब', अन्तिम अमर गुरु, घोषित किया।**

गुरु नानक देव जी से आरंभ होने वाली घड़ी से लेकर दसवें पातशाह गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा पावन स्थान प्राप्त करने तक के इस 239 वर्ष के समय में सिख धर्म को इसका पवित्र धर्म ग्रंथ, इसके चिह्न और निशान और त्रुटिहीन स्वरूप अथवा आयाम मिल गया। एक गुरु जी से दूसरे गुरु जी में रूप परिवर्तन उसी तरह हुआ, जिस तरह एक दीये से दूसरा दीया जलाया जाता है। दसों गुरु साहिबान का पावन परिवर्तन एक रूप ही समझा जाता है; क्योंकि वे सब एक ही दैवी प्रकाश में से निरंतर एक ही उद्देश्य के लिए प्रगट हुए। गुरुता का संस्थापन, उत्तराधिकारियों का सिलसिला, अमृतसर और अन्य सिख धर्म स्थलों का निर्माण, आदि ग्रंथ जी का संकलन, संगत और पंगत की संस्था, गुरु साहिबान की शहादतें, शक्ति का जिरिह–बख्तर और कलगी, खालसा की स्थापना, इन सबके साथ–साथ अन्य बहुत सारी दूसरी घटनायें जिनसे सिख इतिहास बना है, सिख धर्म को सबसे ऊँची महिमा की रंगत प्रदान करती हैं।

सिख धर्म में गुरुता केवल सूफियों अथवा जोगियों की श्रेणी नहीं, क्योंकि गुरु साहिबान ने सांसारिक जीवन के त्याग को कोई महत्व नहीं दिया। बल्कि जो लोग जोगियों या सिद्धों की तरह सन्यास धारण करते थे, उन्हें अपनी जिम्मेदारियों से आँख चुराने वाले कहकर निन्दा की गई है, उन्हें सामाजिक जिम्मेदारियों और अहसानों से मुँह मोड़ने वाले और भगोड़े समझा जाता था। सिख धर्म में मनुष्य को अकाल पुरुख का भाणा मानना अर्थात उसकी इच्छा को स्वीकार करने को कहा गया है और इस तरह अपने दुख और अभाव को सुखदायक रंगत देने का आदेश है। क्लेश और दुख पर विजय प्राप्त करने में भरोसा रखते हुए सिख धर्म इसके लिए अटूट यत्न करने का आदेश देता है।

जीवन मनोरथ :

गुरु जी के उपदेशों के अनुसार नैतिक (सदाचारी) जीवन का भाव कुछेक ओदश, या एक नियमावली, या एक परम्परा, रस्म–रिवाज को मानना ही नहीं है, बल्कि अत्यंत कड़े अनुशासन के अधीन आध्यात्मिक खोज की ओर लगाया गया जीवन है। अधिकांश लोग आमतौर पर भौतिक जीवन का पूरा–पूरा आनंद लूटने में ही यकीन रखते हैं। इस प्रकार जीवन बिताते हुए आखिर वह समय आता है, जब मनुष्य देखता है कि उसका शरीर क्षीण हो गया है और वह आध्यात्मिक तौर पर खोखला है। इस भौतिकवादी संसार में सफलता के जादू से खिंचा मनुष्य, जीवन के शाश्वत मूल्यों की ओर मामूली–सा ध्यान देता है या बिलकुल भी नहीं देता।

पूर्वी धर्मों के अनुसार संसार में 84 लाख योनियाँ हैं, जिनमें से आधी पानी में और आधी धरती और आकाश में। कोई भी जीवन हमेशा रहने वाला नहीं। यह जीवन अपने 'कर्मों' अर्थात् अच्छे या बुरे कामों के अनुसार आवागमन के चक्कर में चलता जाता है। मनुष्य जन्म, जैसा कि गुरबाणी भी बताती है, कई निचली योनियों में से आवागमन के बाद प्राप्त होता है :

"कई जनम भये कीट पतंगा।
कई जनम गज मीन कुरंगा।
कई जनम पंखी सरप होइयो।

कई जनम हैवर बिरख जोइयो।
मिलु जगदीश मिलन की बरीआ।
चिरंकाल इह देह संजरीआ।"
(गउड़ी गुआरेरी महल्ला 5, पृष्ठ 176)

गुरमत के अनुसार जीवन का मनोरथ यह है :

"भई परापति मानुख देहुरीआ।
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ।
अवरि काज तेरै कितै न काम।
मिलु साध संगति भजु केवल नाम।
सरंजामि लागु भवजल तरन कै।
जनमु बथ्था जात रंगि माया कै। रहाउ।"
(आसा महल्ला 5, पृष्ठ 12)

मनुष्य की आत्मा मुक्ति का द्वार है, पर भौतिकवादी जगत का लुभाया व्यक्ति इस जीवन का अति कीमती अवसर गंवा देता है :

"प्राणी तूं आया लाहा लैणि।
लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि।"
(सिरी राग महल्ला 5, पृष्ठ 43)

"रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइया खाइ।
हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ।"
(गउड़ी बैरागणि महल्ला 1, पृष्ठ 156)

"लख चउरासीह भ्रमतिया दुलभ जनमु पाइओइ।
नानक नामु समालि तूं सो दिनु नेड़ा आइओइ।"
(सिरी राग महल्ला 5, पृष्ठ 50)

"रामनाम बिनु बिरथे जगि जनमा।
बिखु खावै बिखु बोली बोलै बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना।"
(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1127)

"जिन हरि हिरदै नामु न बसिओ तिन मात कीजै हरि बांझा।
तिन सुंञी देह फिरहि बिनु नावै ओइ खपि खपि मुए करांझा।"
(जैतसरी महल्ला 4, पृष्ठ 697)

सिख धर्म में मनुष्य जीवन का मनोरथ हिंदुओं के आम प्रचलित विचार वाला स्वर्ग प्राप्त करना नहीं है, बल्कि अकाल पुरुख को खोजना और उससे जुड़ जाना है। सिख धर्म का अन्तिम लक्ष्य परम आत्मा में अभेद होना और फिर सदा के लिए निरंतर आनंद प्राप्त करना है। एक सिख अकाल पुरुख के साथ आध्यात्मिक मेल, आनंद की एक अवस्था, के लिए प्रतीक्षा करता है। मनुष्य जीवन उस लक्ष्य को प्राप्त करने का अवसर है, अगर यह हाथ से निकल जाए तो मनुष्य फिर जन्म–मरण के चक्कर में चला जाता है।

सिख धर्म में अकाल पुरुख का संकल्प :

अकाल पुरुख के गुण गुरु ग्रंथ साहिब के आरंभ में मूल मंत्र (जपुजी की भूमिका) के माध्यम से बताये गये हैं, "ੴ सतिनाम" से लेकर "नानक होसी भि सच" तक। असल में, सम्पूर्ण गुरु ग्रंथ साहिब इस परिभाषा का स्पष्टीकरण है। गुरु जी राग सोरठ में अकाल पुरुख के संकल्प को विस्तार सहित बताते हैं :

"अलख अपार अगंम अगोचर ना तिसु काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी सम्भउ न तिसु भाउ न भरमा।
साचे सचिआर विटहु कुरबाण।

ना तिसु रूप वरनु नहीं रेखिया साचै सबदि नीमाणु। रहाउ।
ना तिसु मात पिता सुत बंधप ना तिसु कामु न नारी।
अकुल निरंजन अपर परंपरु सगली जोति तुमारी।
घट घट अंतरि ब्रहमु लुकाइया घटि घटि जोति सबाई।
बजर कपाट मुकते गुरमती निरभै ताड़ी लाई।
जंत उपाइ कालु सिरि जंता वसगति जुगत सथाई।
सतिगुरु सेवि पदारथ पावहि छुटहि सबद कमाई।
सूचै भाडै साचु समावै विरले सूचाचारी।
तंतै कउ परम तंत मिलाइया नानक सरणि तुमारी।"

(सोरठ महल्ला 1, पृष्ठ 597)

अकाल पुरुख निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में उपस्थित है। निर्गुण अकाल पुरुख निराकार और मनुष्य की पहुँच से परे है। जब वह अपनी रचना के माध्यम से अपने आप को प्रगट करता है तो वह संबंधित और व्यक्तिगत हो जाता है। यह बिलकुल उस तरह है, जैसे किरणें सूरज में से आती हैं। स्रोत निराकार है और सारा ब्रह्मांड उसका व्यक्तिगत रूप है। कोई आकार, बेशक कितना ही अद्वितीय हो, उस अकाल पुरुख से स्वतंत्र नहीं। निराकार अनन्त अनगिनत आकारों में प्रकट हो सकता है, पर काई आकार अकेले–अकेले या संगठित होकर निराकार के बराबर नहीं हो सकते। **सो, कोई सीमित आकार को अकाल पुरुख के तौर पर, जो अनन्त और निराकार है, नहीं पूजा जा सकता। गुरु गोबिंद सिंह जी का भी फरमान है :**

"चक्र चिह्न अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह।
अचल मूरति अनुभव प्रकाश अमितोज कहिज्जै।कृ"

(गुरु गोबिंद सिंह जी, जापु साहिब)

अकाल पुरुख न जन्म लेता है, ना ही मरता है।

"सो मुखु जलउ जितु कहहि ठाकुरु जोनी।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1136)

गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी चेतावनी दी थी कि वे अकाल पुरुख नहीं हैं और जो भी उनको अकाल पुरुख कहेगा, वह नरक में जाएगा।

"जो हम को परमेसर उचरहे सो नरक कुंडमह परै।"

(1) अकाल पुरुख अपने संतों और भक्तों की रक्षा करता है, जब तक उसकी रजा न हो कि इनके कष्ट और शहादतें एक ऊँचे मनोरथ की प्राप्त होंगी। पवित्र जीवन वालों की रक्षा करना अकाल पुरुख का बिरद (सिरमौर गुण) है। सख्त खतरों के सामने संत अकाल पुरुख के सम्मुख सहायता और बचाव के लिए अरदासें करते आये हैं और अकाल पुरुख आकर करामाती ढंग से उनके कष्ट दूर करता रहा है। गुरु ग्रंथ साहिब में प्रहलाद, ध्रुव और अन्य कथाओं के संकेत और नामदेव और कबीर जी के अपने जीवन के बारे में वचन, अकाल पुरुख की पवित्र जीवन वालों की रक्षा करने की शक्ति को प्रगट करते हैं। ऐसी करामातें विधाता और प्रतिपालन के सिद्धान्त का अंश हैं। ये अलौकिक ईश्वरीय चमत्कार मनुष्य की चमत्कारी शक्तियों से किये गये चमत्कारों से भिन्न प्रकार के होते हैं। मनुष्य के चमत्कार सिख मत के अनुसार खतरनाक और अनुचित हैं।

(2) जो आप बोओगे, वही फल आपको मिलेगा, यह कथन कर्मों के सिद्धान्त की ओर संकेत करता है, अच्छे या बुरे काम जिसका अर्थ है कि अच्छे कामों का अच्छा और बुरे कामों का बुरा फल मिलता है। इस प्रकार कर्म के सिद्धान्त के अनुसार सबसे अधिक पाप अथवा बुरे कर्म करने वाला सदैव दुखी रहेगा और कभी भी मुक्ति नहीं पा सकेगा। गुरु नानक देव जी ने इस को स्वीकार नहीं किया, उनका विचार है कि सबसे बड़े पापी को भी क्षमा कर देना अकाल पुरुख का बिरद (सिरमौर गुण) है।

"पतित पावन प्रभ बिरदु तुम्हारो, हमरे दोख रिदै मत धारहु।"

(बिलावलु महल्ला 5, पृष्ठ 829)

गुरु जी जोर देकर बताते हैं कि कोई गुनाहगार जिसे सारे जगत में कोई भी सहारा नहीं देता, अगर वह अकाल पुरुख की शरण में आ जाए तो वह निर्मल हो जाता है, उस पर अकाल पुरुख की दया हो जाती है।

"जिसु पापी कउ मिलै न कोई।
सरिण आवै तो निरमलु होई।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1141)

गुरु जी बार–बार बताते हैं कि संतों को मुक्ति दिलाना, नेक मनुष्यों की रक्षा करना और पश्चाताप करने वाले पापियों को भी बख्श देना अकाल पुरुख का सर्वोत्तम गुण है।

नाम का संकल्प :

गुरमत के अनुसार ब्रह्मांड की रचना करने से पहले अकाल पुरुख सम्पूर्ण तौर पर स्वयं ही थे– निराकार। जब उसने सगुण स्वरूप धारण किया तो पहले नाम के स्वरूप में प्रगट हुआ और उसके बाद प्रकृति की रचना की। प्रकृति की रचना करके वह इससे दूर नहीं हो गया, बल्कि इसके अन्दर रहकर इसे जीवन बख्शा और अपनी बनाई गई रचना को देखकर प्रसन्न हो रहा है :

"आपीनै आप साजिओ आपीनै रचिओ नाउ।
दुयी कुदरति साजीयै करि आसणु डिठो चाउ।"

(आसा महल्ला 1, पउड़ी 1, पृष्ठ 463)

(1) नाम और अकाल पुरुख दोनों अलग–अलग नहीं हैं। नाम सर्वशक्तिमान का दूसरा पक्ष ही है, अभी भी निराकार ही। नाम अकाल पुरुख का सम्पूर्ण प्रकटीकरण है। नाम ही सब कुछ का सहारा है :

"नाम के धारे सगले जंत।
नाम के धारे खंड ब्रह्मंड।"

(गउड़ी सुखमनी महल्ला 5, 16–5, पृष्ठ 284)

(2) नाम केवल एक नाम(संज्ञा) नहीं और इसका भाव यह नहीं कि अकाल पुरुख का एक खास नाम है और इसका गायन करते रहने से अकाल पुरुख से मिल जाओगे। अकाल पुरुख अनन्त है और उसको अनन्त नामों से पुकारा जा सकता है, पर उसके अनगिनत नामों को गिनती कौन कर सकता है ? ज्ञानवान और पवित्र व्यक्ति अकाल पुरुख को उसके गुणों के माध्यम से ही याद करते हैं :

"तव सरब नाम कथै कवन
करम नाम बरणत सुमत।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी– जापु साहिब)

(3) अकाल पुरुख को उसके भगत अनगिनत नामों से बुला सकते हैं और वे यह नाम अकाल पुरुख के गुणों के अनुसार ही रख लेते हैं, पर अकाल पुरुख का पहला और प्रमुख नाम स्पष्ट तौर पर "सति" (अमर सत्य) ही वर्णन किया गया है, जिसका भाव है – अकाल पुरुख का अमर अस्तित्व।

"किरतम नाम कथे तेरे जिहबा
सतनामु तेरा परा पूरबला।"

(मारू महल्ला 5, पृष्ठ 1083)

(4) 'नाम' शब्द एक रहस्यमयी 'शब्द' है जो क्रियात्मक धार्मिक जीवन और आराधना के अनुशासन में प्रयोग में लाया जाता है। अकाल पुरुख को उसके गुणात्मक नामों से याद किया जाता है। इसका एक अन्य पक्ष सच्चा 'नाम' है जो एक पैगम्बर के निजी अनुभव में से उपजता है। यह पैगम्बर को अकाल पुरुख की मिली झलक में से उपजता है। सिख धर्म में ऐसे रहस्यमयी 'शब्द' को **'वाहेगुरु'** कहा जाता है। सच्चा नाम(सतिनामु) किसी वस्तु को बखानने वाला शब्द नहीं, बल्कि 'सत्य' (सति) की सम्पूर्ण शक्ति, उसके गुण और चरित्र का बयान है। "वाहेगुरु" शब्द के माध्यम से पैगम्बर (गुरु जी) ने अकाल पुरुख की सब ओर

व्याप्त रहस्यमयी शक्ति और इसके अनुभव का तात्पर्य बताने की कोशिश की है। पैगम्बरों ने हमें अकथ अकाल पुरुख के दिव्य नाम दिये हैं जो हमारी चेतनता में उसके अस्तित्व को दर्शाते हैं। सच्चे नाम (वाहेगुरु) का सुमिरन करना अकाल पुरुख को हमारी चेतना में बसाने का अभ्यास करना है।

(5) गुरबाणी नाम है :

(क) गुरबाणी स्वयं ही नाम है :

'गुरमुखि बाणी नामु है नामु रिदै वसाई।"

(सारंग की वार, पउड़ी, पृष्ठ 1239)

(ख) 'नाम जपो' का भाव है, अकाल पुरुख को याद करना और उसे अपने हृदय में बसाना। आराधना करने के सभी ढंग श्रद्धालू को अकाल पुरुख के सानिध्य में ले जाते हैं, पर गुरबाणी के अनुसार हरि कीर्तन आराधना की उच्चतम विधि है। यह कीर्तन करने–सुनने वालों की चेतना को सबसे ऊँचे स्तर पर अकाल पुरुख के सानिध्य में ले जाता है :

"हरि कीरति उतमु नामु है विचि कलिजुग करणी सार।"

(कानड़े की वार महल्ला 5, पृष्ठ 1314)

(ग) गुरमत बताती है कि 'हरि हरि' शब्द का अलाप नाम जपना है :

"हरि हरि हरि हरि नामु है गुरमुख पावै कोइ।"

(कानड़े की वार महल्ला 4, पृष्ठ 1313)

(घ) नाम बिना मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में जो कुछ भी मुक्ति दिलाता है, वह 'नाम' है। क्योंकि गुरबाणी मोक्ष दिलाती है, इसलिए गुरबाणी नाम है :

"साची बाणी मीठी अमृतधार।
जिनि पीती तिसु मोखु दुआर।"

(मलार महल्ला 1, पृष्ठ 1275)

"साची बाणी सिउ धरे पिआरु।
ता को पावै मोख दुआरु।"

(धनासरी महल्ला 1, पृष्ठ 661)

सो, यह स्पष्ट और प्रत्यक्ष है कि गुरबाणी का किसी तरह अलाप करना, बेशक एक मन, एक चित्त से साधारण पाठ ही हो, या गुरबाणी के किसी शबद का सुमिरन, या गुरबाणी का कीर्तन, पूर्ण तौर पर नाम जपना माना जाता है, अर्थात् अकाल की उपस्थिति में अपने चित्त को जोड़ना।

यहाँ यह भी बता दें कि कई छोटे–छोटे फिरके हैं जो भोले–भाले सिखों को गुरबाणी और नाम के बारे में गलत राह पर डालते हैं। इन फिरकों के नेता भोले सिखों को जोर देकर कहते हैं : "गुरबाणी कहती है कि नाम का सुमिरन ज़रूर करना है, पर गुरबाणी नाम नहीं। आओ, हम तुम्हें 'नाम' देंगे।" फिर उन सिखों के कानों में घुसर–पुसर करके गुरबाणी की कोई टूटी–फूटी तुक कहते हैं कि वे 'नाम' बताते हैं और साथ ही, चेतावनी देते हैं कि यह 'नाम' किसी को बताना नहीं, अगर कभी वे किसी को यह 'नाम' बता देंगे तो उन पर कोई अनिष्ट हो जाएगा। इस तरह वे अपनी दुकानें चला रहे हैं, और भोले–भाले सिख और अन्य लोग इस झूठ के दुकानदारों के झांसे में आकर गुमराह हो जाते हैं और उनकी लपेट में आ जाते हैं। इसलिए सिखों को ऐसे फिरकों से बहुत होशियार रहना चाहिए। जो लोग कहते हैं कि गुरबाणी नाम नहीं, वे या तो गुमराह किये हुए लोग हैं या धोखेबाज हैं। गुरमत के अनुसार गुरबाणी सबकुछ है :

गुरबाणी नाम है : "गुरमुखि बाणी नामु हैकृ"

(सारंग की वार, पउड़ी, पृष्ठ 1239)

गुरबाणी गुरु है : "बाणी गुरु गुरु है बाणीकृकृ"

(नट महल्ला 4, पृष्ठ 982)

गुरबाणी निरंकार है : "वाहु वाहु बाणी निरंकार है तिसु जेवडु अवरु ना कोई।"

(श्लोक महल्ला 3, पृष्ठ 515)

गुरबाणी सब नाद और वेद है :

"सभ नाद बेद गुरबाणी मन राता सारिगपाणी।"
(रामकली महल्ला 1, पृष्ठ 879)

इसलिए 'नाम' ही है जो मनुष्य को अन्त में शाश्वत आनंद (आत्मिक सुख) की ओर ले जाता है। अकाल पुरुख की चेतना के लिए 'नाम' से जुड़ना आवश्यक है, पर गुरु के बिना किसी को नाम की प्राप्त नहीं हो सकती और वह अंधेरे में भटकता रहेगा।

"जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार।
ऐते चानण होंदिया गुर बिनु घोर अंधार।"
(आसा दी वार, महल्ला 2, पृष्ठ 463)

"मत को भरमि भुलै संसारि।
गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि।"
(गौड महल्ला 5, पृष्ठ 864)

"गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि घटि घटि हरि भरपूर रहिया।
नामु रतन तिना हिरदै प्रगटिया जो गुर सरणाई भजि पइया।"
(प्रभाती महल्ला 3, पृष्ठ 1334)

"राम नाम सभु को कहै कहियै रामु न होइ।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ।"
(गूजरी महल्ला 3, पृष्ठ 491)

गुरु का संकल्प :

गुरु के संकल्प के बारे में पिछले अध्यायों में बताया गया है। एक जोगी ने गुरु नानक देव जी से पूछा कि आपका गुरु कौन था ? गुरु जी ने उत्तर दिया, "शब्द[1] गुरु है।" अकाल पुरुख ने गुरु नानक देव जी को अपने शब्द, अपने ज्ञान का टीका लगाया और गुरु जी का पूर्ण व्यक्तित्व शब्द–रूप हो गया। गुरु जी ने बहुत स्पष्ट किया था कि उनका मानव शरीर गुरु नहीं, और गुरु का केवल बाहर से दर्शन करना, या उसमें श्रद्धा का ऊपरी दावा करना, सिख को गुरु से नहीं जोडेगा। असली गुरु उनके हृदय में शब्द का प्रकाश था और सिख को गुरु के पास उस प्रकाश को प्राप्त करने के लिए ग्रहणशील मन से जाना चाहिए।

सिख धर्म में दीक्षा :

'नाम' ही वह पूर्ण माध्यम है जो एक मनुष्य को निराकार अकाल पुरुख में वापस ले जाता है। गुरु ही एकमात्र माध्यम है, नाम की ओर ले जाने का। गुरमत बताती है कि नाम रूपी रत्न केवल उनके हृदयों में प्रगट होता है जो गुरु की शरण का आसरा लेते हैं।

हम गुरु की शरण का आसरा किस तरह लेते हैं ?

जब हम गुरु के पास जाते हैं, वह हमें 'नाम' बख्शता है और फिर हम गुरु के बख्शे हुए नाम का सुमिरन करते हैं, जो हमें अपने ठिकाने– अकाल पुरुख के पास– वापस ले जाता है। हमें गुरु के पास किस तरह जाना है ?

सिख धर्म में गुरु के पास जाने का एक, और केवल एक ही राह है– अमृत छक कर दीक्षा लेना। एक सिख को पाँच प्यारों से दीक्षा लेना, अमृत

छकना आवश्यक है। फिर वह गुरु का अर्थात् 'गुरुवाला' हो जाता है। बगैर अमृत छके एक सिख गुरु बिना अर्थात् 'निगुरा' रहता है और गुरबाणी के अनुसार :

"सतिगुर बाझहु गुरु नहीं कोई, निगुरे का है नाउ बुरा।"

(राग आसा महल्ला 3, पट्टी, पृष्ठ 435)

हर कोई अकाल पुरुख का नाम जपता है, पर नाम दोहराये जाने से अकाल पुरुख नहीं मिलता। जब गुरु की कृपा से नाम हृदय में बस जाता है, तब ही नाम जपने का कार्य फलदायक होता है। गुरु की कृपा के बिना एक सिख अपनी मुक्ति का उद्देश्य पूरा नहीं कर सकता। गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिए हमें गुरु का होना पड़ता है जो केवल अमृत छकने पर ही हो सकता है।

"राम राम सभ को कहै कहियै रामु न होइ।
गुरपरसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ।"

(गूजरी महल्ला 3, पृष्ठ 491)

प्रश्न उठता है कि एक सिख के लिए अपनी मुक्ति प्राप्त करने का क्या कोई दूसरा राह है ?

गुरमत के अनुसार दूसरा कोई राह नहीं। यह जगत माया (पदार्थवाद) का एक विशाल और भयानक सागर है। एक सिख ने अपने प्रिय अकाल पुरुख को मिलने के लिए यह सागर पार करना है। सागर का कोई अन्त नहीं दिखाई देता और राह में अनगिनत रुकावटें हैं। इस खतरनाक और भयानक सागर को पार करने के लिए तगड़ा मजबूत जहाज चाहिए और वह जहाज केवल गुरु–दैवी प्रकाश– ही है। जहाज में जाने के लिए एक सिख को गुरु रूपी एक पासपोर्ट चाहिए और वह पासपोर्ट अमृत छकना है।

"भवजलु बिखमु डरावणो ना कंधी ना पारु।
ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना तिसु वंझ मलारु।
सतिगुरु भै का बोहिथा नदरी पारि उतारु।"

(सिरी राग महल्ला 1, पृष्ठ 59)

अमृत छकने की मर्यादा पहले गुरु नानक देव जी ने ही चलाई थी। जो लोग गुरु जी के सिख बने, उनको गुरु जी ने ही अमृत दिया था। गुरु जी के दरबार में केवल हाज़िरी भरने से कोई गुरु का सिख नहीं बन जाता था। पहले गुरु से लेकर दसवें गुरु तक यह मर्यादा चरण पाहुल (चरणामष्त) लेने से होती थी अर्थात् गुरु जी के चरण के अंगूठे (या चरण) को जल में डुबोकर वह जल श्रद्धालू को पीने के लिए दिया जाता था और साथ ही, गुरु जी गुरमंत्र(शब्द) देते थे। खालसा की स्थापना के बाद दशम पातशाह ने यह परम्परा बदलकर अमृत छकाने की मर्यादा पाँच प्यारों को सौंप दी। उसके बाद जो गुरु जी के धर्म (सिख धर्म) को स्वीकार करते थे, उन्हें अमृत छकाकर खालसा बुलाया जाता था (इस प्रकार 'सिख' और 'खालसा' शब्द समानार्थी हो गये)। गुरु जी ने सभी को हुक्मनामे भेजे कि अमृत छको और खालसा वर्ग में शामिल हो जाओ। **पाँच प्यारों से सबसे पहले गुरु गोबिंद सिंह जी ने अमृत छका।** ऐसा इसलिए कि हरेक सिख के लिए यह बिलकुल स्पष्ट हो जाये कि गुरु जी की शरण में जाने और उनकी कृ पा प्राप्त करने के लिए पाँच प्यारों से अमृत छकना पड़ेगा। केवल तभी आध्यात्मिकता की ओर यत्न फलदायक होंगे। गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह जी तक जो भी गुरु के सिख कहलाते थे, उन्हें सदैव गुरु जी ने चरणामृत छकाकर दीक्षा दी जाती थी। गुरु जी का प्रत्येक सिख को अमृत छकने का हुक्म है और यह हुक्म मानने के बाद ही वह गुरु जी को स्वीकार हो सकता है।

"हुकमि मन्नियै होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी।"

(आसा दी वार, पउड़ी 15, पृष्ठ 471)

आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अमृत छकना पहला कदम है। गुरु की 'रहित–मर्यादा (Code of conduct)' अर्थात् आचार–संहिता के अनुसार सदाचारी और धार्मिक जीवन अपने नित्य के कामों में कायम करना है। आचार–संहिता में आध्यात्मिक उत्तेजना, अपना फर्ज ईमानदारी से निभाना, नम्रता, संयम और परोपकार शामिल है। आचार–संहिता पर दृढ़ता से अमल किये बगैर केवल ऊपरी श्रद्धा सिख को आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर नहीं ले जाएगी। अमृत छकने के बाद जीवन के हर क्षेत्र में सिख निरन्तर श्रद्धा और गुरु जी के आदेश के लिए हार्दिक प्रेम के रास्ते 'गुरु की मेहर' तलाशता है। गुरु जी के सम्मुख स्वयं

को झुकाकर और बिना शर्त अपने आप की पूर्ण रूप से सौंपकर, श्रद्धालू गुरु की भावना में पुनर्जन्म लेता है और केवल उसी अवस्था में पहुँचकर ही शिष्य एक सच्चा सिख कहलाता है।

"गुरु सिखु सिखु गुरु है ऐको गुर उपदेसु चलाये।
रामनाम मंतु हिरदै देवै नानक मिलणु सुभाये।"

(आसा महल्ला 4, पृष्ठ 444)

अहंवाद :

अकाल पुरुख हर जगह व्याप्त है और हमारे अन्दर भी, पर अहं का एक पर्दा हमें उससे अलग कर देता है, यह सत्य को हमसे छिपाता है :

"हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ।
भांबीरी के पात पारदो बिनु पेखे दूराइओ।"

(राग सोरठ महल्ला 5, पृष्ठ 624)

सब के सब पाँचों विकार – काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार – आध्यात्मिक पंथ में रुकावटें हैं, पर अहंकार इन सब में प्रमुख है। गुरु जी के शब्दों में 'अहंकार' पद सबसे अधिक बार आता है और यह सबसे अधिक घातक बुराई समझी गई है। अहंकार आचरणात्मक बदी है जो सारे बुरे कामों का मूल कारण है। यह अहंकार भ्रम का कार्य–कारण है जिसके द्वारा मनुष्य को अपना आप ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण लगता है। उसके सारे कामों की दिशा पूर्णरूप से उसकी अपनी ओर ही है। "हउ विचि जम्मिया, हउ विचि मुआ" अर्थात् अहंकार में जन्मा और अहंकार में मरा (आसा महल्ला 5, पृष्ठ 466)। यह महान तपस्या के फल का भी नाश कर देता है। अहंकार का पर्दा जब एक महान जोगी पर पड़ता है तो एक क्षण में वह अपनी वर्षों की तपस्या से मिले हुए लाभ को गवां बैठता है। यह अहंकार एक ऐसा रोग है और आध्यात्मिक प्रगति की राह में एक बाधा है। **जीवन का मनोरथ अकाल पुरुख की महिमा और दैवी गुणों को ग्रहण करते हुए आध्यात्मिक मुक्ति पर केन्द्रित है।** अहंकार में अंधा हुआ मनुष्य अकाल पुरुख की महिमा को नहीं देख सकता। इसलिए जिनके अन्दर अहंकार है, उसके हृदय में 'नाम' नहीं बसेगा। नाम और अहंकार दो विरोधी तत्व हैं :

"हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इक ठाइ।"

(वडहंस महल्ला 3, पृष्ठ 560)

अहंकार में ग्रसित मन गुरु जी के बताये उपदेशों पर नहीं चल सकता और इस प्रकार अपनी दबी हुई आत्मा को अंधकार में अपना राह टटोलने के लिए छोड़ देता है। वह अपना लक्ष्य कभी भी प्राप्त नहीं करता। अहंकार आवश्यक आध्यात्मिक प्राप्ति के रास्ते में रोड़ा बन खड़ा होता है। गुरु जी ने अहंकार ग्रसित मनुष्य को 'मनमुख' नाम दिया है। गुरु जी की मेहर से केवल शबद के द्वारा ही अहंकार भस्म हो जाता है :

"गुर कै सबदि परजालीयै ता इह विचहु जाइ।"

(बिलावलु की वार, महल्ला 3, पृष्ठ 853)

मुक्ति – अकाल पुरुख को मिलने का राह :

एक शरीर जीवन के बिना मृतक है और जीवन नाम के बिना मृतक है। नाम जीवन के लिए संजीवनी है जिसके बिना जीवन निरर्थक और कूड़े–करकट का ढेर होगा। नाम को भूलना आत्मा को कष्ट देता है। नाम के बग़ैर कोई आध्यात्मिक जाग्रति नहीं, मन की शान्ति नहीं, कोई खुशी नहीं और न ही आत्मिक सुख होता है। एक सच्चे और फलदायक जीवन के लिए नाम में लगना एक आवश्यक शर्त है :

"रसना जपै न नामु तिलु तिलु करि कटीयै।"

(फुनहे, महल्ला 5, पृष्ठ 1363)

गुरमत मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्रत, रीति–रस्में और कर्मकांड के वसीलों का खंडन करती है। गुरमत योग, तपस्या, अपने आप को कष्ट देना, और प्रायश्चित या सन्यास के दावों, और देवियों, पत्थरों, मूर्तियों, कब्रों, श्मसानों, समाधियों, बुतों और तस्वीरों की पूजा को भी नहीं मानती। गुरमत मुक्ति प्राप्त करने के लिए अकाल पुरुख की रची किसी चीज की पूजा करने से मना करती है। केवल एक अकाल पुरुख, निराकार, जगत के रचयिता की महिमा का ही गान करना है।

अकाल पुरुख को मिलने का राह सबसे अधिक कठिन और जटिल है। गुरु नानक देव जी ने हमें एक तकनीकी मार्ग दर्शा कर यह राह सादा और शीशे की भांति साफ कर दिया है। गुरु जी समझाते हैं कि क्योंकि मनुष्य जन्म कई जूनों(योनियों) में से गुजरने के बाद ही मिलता है, इसलिए इसमें उन जूनों की मैल इकट्ठा हुई होती है। मनुष्य का मन उस मैल से काला हुआ होता है :

"जनम जनम की इसु मन कउ मलु लागी काला होया, सिआहु।"

(श्लोक महल्ला 3, पृष्ठ 651)

जब तक मनुष्य का मन मैला रहता है, यह आत्मा उस अकाल पुरुख जो बिलकुल निर्मल है, के साथ नहीं मिल सकती। जब मन स्वच्छ हो जाता है, तो आत्मा परम आत्मा में मिल जाएगी। मन किस तरह स्वच्छ होता है ?

"मन ते धोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि।"

(वडहंस, महल्ला 1, पृष्ठ 557)

जिन्होंने यह 'सिफति' अर्थात् पूजा और स्तुति की है, उन्होंने माया का सागर पार कर लिया है और अकाल पुरुख में समा गये हैं :

"तूं सचा साहिबु सिफति सुआलिउ जिनि कीती सो पारि पइया।"

(श्लोक, महल्ला 1, पृष्ठ 469)

अगर एक गिलास मैले पानी से भरा हुआ है, उसमें लगातार साफ पानी डालते जाओ। ज्यों–ज्यों साफ पानी डलता जाएगा, मैला पानी ऊपर आकर गिलास से बाहर गिरता जाएगा और आखिर में, गिलास साफ पानी से भर जाएगा।

इसी प्रकार लगातार अकाल पुरुख की आराधना और पूजा–स्तुति मन की मैल निकाल देगी। मनुष्य मन की हालत अव्यवस्थित अर्थात् गड्मड् होती है। यह पाँचों विकारों 'काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार अर्थात् अहं से भरा हुआ है। यह नाम की प्राप्ति की राह में रुकावटें हैं। आध्यात्मिक उन्नति के लिए मन की स्वच्छता आवश्यक है। कोई मनुष्य या साधू इस भीतरी अव्यवस्थित हालत में सुधार किये बिना मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। भीतरी अव्यवस्थित हालत को इसमें से पाँचों विकारों को निकालकर अनुशासन में लाना आध्यात्मिक सर्वोत्तमता के लिए पहली आवश्यकता है, जैसा कि गुरु जी ने हुक्म किया हुआ है। अकाल पुरुख सर्वशक्तिमान पातशाह की महिमा का गायन करना, मन की मैल दूर करने में सहायता करेगा। अकाल पुरुख की महिमा का गायन करते हुए मनुष्य–मन ईश्वरीय गुणों को अपने अन्दर बसाता जाएगा। फलस्वरूप इसके जब सारी मैल दूर हो जाएगी, निर्मल मन में नाम निवास कर लेगा। इस प्रकार, अव्यवस्थित हालत सुधर कर मन की हालत आनंदमयी और ऊँची हो जाएगी। आध्यात्मिक विकास होगा और इसका परिणाम होगा– परम आत्मिक सुख :

"सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए।"

(रामकली, महल्ला 3, अनंद, पृष्ठ 917)

गुरमत और भी बताती है कि जब हाथ मिट्टी से सन जाते हैं तो पानी से वह मिट्टी धोई जाती है। अगर कपड़ा मूत्र से गन्दा हो जाए तो सादे पानी से साफ नहीं होगा, उसे साबुन से धोना पड़ेगा। इसी प्रकार, जब हमारा मन पापों की मैल से भरा हो तो उसको साफ करने के लिए तगड़ा साबुन चाहिए और वह साबुन है 'नाम' :

"भरीयै हथु पैरु तनु देह।
पाणी धोतै उतरसु खेह।
मूत पलीती कपडु होइ।

दे साबूणु लईयै ओहु धोई।
भरीयां मति पापां कै संगि।
ओहु धोपै नावै कै रंगि।"

(जपु जी, पउड़ी 20, पृष्ठ 4)

पूजा–स्तुति का पहला प्रभाव यह है कि मन की सारी मैल धुल जाती है और यह शुद्ध हो जाता है। दूसरा, जब मन निर्मल हो जाता है तो इसमें नाम रूपी अमृत का निवास हो जाता है :

"प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ।
अमृत नामु रिद माहि समाइ।"

(गउड़ी सुखमनी, महल्ला 5, 1–4, पृष्ठ 263)

यह अवस्था है जिसको प्राप्त करने के लिए एक सच्चा श्रद्धालू तरसता है। प्रार्थना–स्तुति के माध्यम से मनुष्य का मन नाम से जुड़ता है और प्रकाशमान हो जाता है। प्रकाशमान मन का उद्‌गमन होता है और श्रद्धालू का गुरु जी के उपदेशों के अनुकूल पुनर्जन्म हो जाता है और वह धीरे–धीरे आध्यात्मिक उन्नति करना आरंभ करता है। नाम उसकी चेतना पर उकर जाता है और उसकी आत्मा और मन में उतर जाता है। यह शोभायमान परिवर्तन अर्थात् रूपान्तर मनुष्य की आत्मा को पूर्ण आनंद की दशा में चढ़ने में सहायक होता है। यह परिवर्तन एक मनुष्य के अपने अन्दर एक सूरत से दूसरी सूरत में घटित होता है। अकाल पुरुख से जुड़ने का पक्ष मनुष्य के अन्दर ही परिवर्तन करता है और श्रद्धालू को व्यक्तित्व से ऊपर व्यक्तित्व–रहित की अवस्था में ले जाता है। सारी सीमा–रेखाएँ, बन्दिशें और बाधाएँ टूट जाती हैं और एक मनुष्य की आत्मा परम आत्मा में अभेद होने लगती है, जैसे पानी पानी में मिल जाता है, हमारी ज्योति अकाल पुरुख की ज्योति में समा जाती है :

**"मन तन नामि रते इक रंगि।
सदा बसहि पारब्रह्म कै संगि।
जिउ जल महि जल आइ खटाना।
तिउ जोती संगि जोति समाना।
मिटि गये गवन पाए बिसराम।
नानक प्रभ कै सद कुरबान।"**

(गउड़ी सुखमनी महल्ला 5, 11–8, पृष्ठ 278)

सुमिरन किसका किया जाए अर्थात् पूजा–स्तुति किस तरह की जाए :

एक सिख को केवल एक अकाल पुरुख की पूजा करनी है और अन्य किसी की नहीं। पर अकाल पुरुख निराकार है, फिर आराधना किसकी की जाए, किस पर ध्यान लगाया जाए ? सिद्धों के साथ एक गोष्ठी के समय चरपट नामक एक योगी ने गुरु नानक देव जी से पूछा, "आप कहते हैं कि संसार–त्याग न किया जाए, बल्कि इसमें रहकर जीवन बिताया जाए। पर माया (पदार्थवाद) इतनी प्रबल है, उस पर किस प्रकार नियंत्रण रखा जाए और माया के बीच रहते हुए अकाल पुरुख में अभेद कैसे हुआ जाए ? कृपा करके इस बारे में अपने मंतव्य को स्पष्ट करे ?"

"दुनिया सागरु दुतरु कहीयै कियुकरि पाईयै पारो।
चरपटु बोलै अऊधू नानक देहु सचा बीचारो।"

(सिध गोष्टि, चरपट, पृष्ट 938)

गुरु जी ने दो उदाहरण दिए :

एक, कमल का फूल सदैव पानी की सतह से ऊपर तैरता रहता है। यह पानी के बिना जीवित नहीं रह सकता, तब भी यह पानी की लहरों पर अनभीगा रहकर सदैव पानी की सतह से ऊपर उठा रहता है।

एक बत्तख पानी में तैरती है, लेकिन कभी भी अपने पर गीले नहीं होने देती। अगर इसके पर भीग जाएँ, तो यह डूब जाएगी। और बत्तख यह जानती है। हालांकि बत्तख पानी के बिना रह नहीं सकती, तब भी यह पानी की लहरों की परवाह नहीं करती।

इसी प्रकार एक मनुष्य जगत में माया(पदार्थवाद) के बगैर नहीं रह सकता, पर तब भी माया में रहते हुए हमें माया से ऊपर रहकर ही जीवन जीना है। भौतिक आवश्यकताओं की इच्छा होती है और यह आवश्यकताएँ, जीवन के अति आवश्यक कार्यों के लिए ज़रूरी हैं। सो, जैसे एक कमल का फूल और बत्तख पानी में रहते हुए भी पानी में डूबते नहीं, एक मनुष्य भी माया से अलग और निरपेक्ष रहना चाहता है, अकाल पुरुख को याद रखते हुए। यह पूजा–स्तुति के द्वारा ही संभव है। शबद (रब्बी बाणी या ईश्वरीय बाणी) से जुड़ना, माया के तत्व को दबा देगा और अन्दर 'नाम' का वास कर देगा जोकि मनुष्य को निराकार अकाल पुरुख में वापस ले जाएगा :

"जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे।
सुरति शबद भव सागरु तरीयै नानक नाम वखाणे।"

(रामकली महल्ला 1, सिध गोष्टि, पृष्ठ 938)

जीवन का मनोरथ प्राप्त करने के लिए पूरे–पूरे ध्यान और लगन की आवश्यकता होती है। मन की निर्मलता और उद्देश्य की निष्कपटता, ये दोनों ही ऐसे मनोरथ की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। जब उद्देश्य निराकार अकाल पुरुख हो तो यह संघर्ष अधिक से अधिक कठिन हो जाता है। जब हम गुरबाणी का पाठ करते हैं और पढ़े जा रहे शबदों के भाव और अर्थ नहीं जानते तो हमारा जपना मशीनी, रिवाजी और व्यर्थ होता है। इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। दूसरा, अगर हमें शबद के अर्थ मालूम भी हों, पर हमारा मन शबद में न जुड़ा हो और पाठ करते हुए इधर–उधर डोलता रहे, तब भी इसका परिणाम सार्थक नहीं होगा। इसलिए यह याद रखना ज़रूरी है कि बेध्यानी में की गयी आराधना फलदायक नहीं होगी और इसी कारण से अकाल पुरुख को परवान नहीं होगी। (अरदास हजूरी की मन्जूर होती है)। एकाग्र, चेतन और पूर्ण तौर पर बेलाग मन आराधना(सुमिरन) के लिए चाहिए। **सो, जब भी हम गुरबाणी पढ़ते, सुनते या गाते हैं तो हमें उस शबद के भावार्थ में पूरा ध्यान देना ज़रूरी है। जब हमारा मन उस शबद में जुड़ जाता है तो हमारा मन उस शबद के तत्व–भाव के प्रभाव को स्वीकार करना शुरू कर देता है और इस प्रकार जुड़ने का फल, आत्मिक सुख, शान्ति और शाश्वत आनंद होता है। (यह है सुरत शबद का मिलाप)। इस जुड़ने में मनुष्य को एक ऐसे रस का अनुभव होता है जिसको हरि रस कहा गया है। पर इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है :**

"आन रसा जेते है चाखे।
निमख न तष्णा तेरी लाथे।
हरिरस का तूं चाखहि सादु।
चाखत होइ रहहि बिसमादु।"

(गउड़ी गुआरेरी, महल्ला 5, पृष्ठ 180)

जब मन शबद के साथ पक्की तरह जुड़ जाता है तो श्रद्धालू गुरु जी के कृपा से पुनर्जन्म प्राप्त करता है। फिर वह शबद में मिलकर इस आत्मिक पुनर्जन्म के बाद कभी नहीं मरता :

"सबदि मरहि फिरि न मरहि ता सेवा पवै सभ थाइ।"

(राग सोरठ, श्लोक महल्ला 3, पृष्ठ 649)

जो लोग शबद (गुरबाणी) के साथ मन को जोड़ लेते हैं, वे अवश्य ही निरंतर आत्मिक सुख को प्राप्त करेंगे :

"पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत।
नामु जपै नानक मनि प्रीति।"

(गउड़ी सुखमनी महल्ला 12–8, पृष्ठ 279)

पहली सूचना : सिख को पाँच प्यारों से अमृत छककर गुरुवाला होकर गुरु प्राप्त नाम की कमाई करनी है। तभी वह परमपद की प्राप्ति पर पहुँच सकेगा।

"जिउ जल महि जल आइ खटाना।
तिउ जोती संगि जोति समाना।"

(गउड़ी सुखमनी महल्ला 5, पृष्ठ 278)

दुर्भाग्य की बात यह है कि सिख का और पंथ का इस ओर ध्यान ही नहीं। सिख अमृत की बात सुनने को तैयार ही नहीं। यह बात ध्यान में रख लेनी चाहिए कि बेशक लाख यत्न कोई करता रहे, पर गुरु के बगैर परमपद की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

"मत को भरमि भुलै संसारि।
गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि।"

(गौड महल्ला 5, पृष्ठ 864)

जब तक परमपद की प्राप्ति नहीं होती, तब तक मनुष्य जन्म मष्त्यु के चक्र में फंसा रहेगा। हो सकता है, 84 लाख के चक्कर में भी पड़ जाए। अगर परमपद की प्राप्ति नहीं तो कम से कम मनुष्य जन्म तो पुनः मिल जाए ? इसलिए, नित्यनेम पाँच बाणियों का पाठ करो। अगर यह नहीं तो जपुजी साहिब का रोजाना पाठ करो। अगर यह भी नहीं तो 15 मिनट "वाहिगुरु" और 15 मिनट मूलमंत्र का पाठ अवश्य करो। दूसरी सूचना : गुरु साहिब का फरमान है –

"सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु।"

(सिरीराग महल्ला 1, पृष्ठ 62)

सच सबसे ऊँचा है। पर सच से भी ऊपर सच का रहना है।

अगर हम गुरु वाले होकर गुरु प्राप्त 'नाम' की कमाई करते हैं, पर अगर फिर भी कम तौलना, ठगी, चोरी, झूठ से संकोच नहीं करते, तो फिर ऊपर बताई गयी पहली सूचना का क्या अर्थ हुआ ?

इसलिए परमपद की प्राप्ति के लिए ये दोनों सूचनाएँ ज़रूरी हैं ताकि गुरु जी कृपा करें।

पूजा–स्तुति के कुछ शबद :

"तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि।
जीउ पिंडु सभ तेरी रासि।
तुम मात पिता हम बारिक तेरे।
तुमरी कृपा महि सूख घनेरे।
कोइ न जानै तुमरा अंतु।
ऊचे से ऊचा भगवंत।
सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी।
तुम ते होइ सु आज्ञाकारी।
तुमरी गति मिति तुम ही जानी।
नानक दास सदा कुरबानी।। 8 ।। 4।।"

(गउड़ी सुखमनी महल्ला 5, 4–8, पृष्ठ 268)

"हे अचुत हे पारब्रह्म अबिनासी अघनास।
हे पूरन हे सरब मै दुख भंजन गुणतास।
हे संगी हे निरंकार हे निरगुण सभे टेक।
हे गोबिंद हे गुणनिधान जा कै सदा बिबेक।
हे अपरंपर हरि हरे हहि भी होवनहार।
हे संतह के सदा संगि निधारा आधार।
हे ठाकुर हउ दासरो मै निरगुन गुन नहीं कोइ।
नानक दीजै नाम दानु राखउ हीयै परोइ।"

(गउड़ी बावन अखरी, महल्ला 5, 55, पृष्ठ 261)

"तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता।
तूं मेरा बंधपु तूं मेरा भ्राता।
तूं मेरा राखा सभनी थाई।
ता भउ केहा काड़ा जीउ।
तुमरी किरपा ते तुधु पछाणा।
तूं मेरी ओट तूं है मेरा माणा।
तुझ बिनु दूजा अवर न कोई।
सभु तेरा खेल अखाड़ा जीउ।
जीअ जंत सभि तुधु उपाये।
जितु जितु भाणा तितु तितु लाये।
सभ किछु कीता तेरा होवै नाही किछु असाड़ा जीउ।।
नामु धिआइ महा सुखु पाया।
हरिगुण गाइ मेरा मनु सीतलाया।
गुरि पूरै वजी वाधाई नानक जित बिखाड़ा जीउ।"
(माझ महल्ला 5, पृष्ठ 103)
"कृपानिधि बसहु रिदै हरि नीत।
तैसी बुधि करहु परगासा लागै प्रभ सगि प्रीति। रहाउ।
दास तुमारे की पावउ धूरा मसतकि ले ले लावउ।
महा पतित ते होत पुनीता हरि कीरतन गुन गावउ।
आज्ञा तुमरी मीठी लागउ कीउ तुहारो भाउ।
जो तू देहि तही इहु तष्पतै आन न कतहू धावउ।
सद ही निकटि जानउ प्रभ सुआमी सगल रेण होइ रहीयै।
साधू संगति होइ प्राप्ति ता प्रभु अपुना लहीयै।
सदा सदा हम छोहरे तुमरे तू प्रभ हमरो मीरा।
नानक बारिक तुम मात पिता मुखि नामु तुमारो खीरा।"
(टोडी महल्ला 5, पृष्ठ 712–13)
"प्रभ बखसंद दीन दयाल।
भगति वछल सदा किरपाल।
अनाथ नाथ गोबिंद गुपाल।
सरब घटा करत प्रतिपाल।
आदि पुरख कारण करतार।
भगत जनां के प्रान अधार।
जो जो जपै सु होइ पुनीत।
भगति भाइ लावै मन हीत।
हम निरगुनीआर नीच अजान।
नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान।"
(गउड़ी सुखमनी महल्ला 5, 20–7, पृष्ठ 290)

तीर्थ यात्रा – तीर्थों पर स्नान :

गुरु नानक देव जी के आगमन से पहले लाखों लोगों के वास्ते भारतीय धार्मिक जीवन व्यवहार में रीतियों–रस्मों पर बहुत अधिक जोर दिया हुआ था। गुरु नानक देव जी जहाँ–जहाँ भी गये, उन्होंने लोगों को उनके वहमों, भ्रमों और उनकी अज्ञानता की बेड़ियों से छुटकारा दिलाने और सब ओर व्याप्त निराकार

अकाल पुरुख में श्रद्धा को दृढ़ कराने का यत्न किया। उस समय लोगों का यह विश्वास था कि गंगा नदी में और अन्य पावन स्थानों (तीर्थों) पर स्नान करना, उन्हें किये गये पापों से मुक्त करा देगा। गुरु जी ने उन्हें जोर देकर समझाया कि तीर्थों पर केवल स्नान करने से अहंकार के मैल से छननी हुआ मन नहीं धोया जा सकता :

"तीरथ भरमस बियाध न जावै।
नाम बिना कैसे सुखु पावै।"

(रामकली महल्ला 1, पृष्ठ 906)

गुरु जी ने यह भी जोर दिया कि अकाल पुरुख के नाम का सुमिरन किये बिना स्थायी शांति प्राप्त नहीं हो सकती। नाम का सुमिरन ही सच्ची तीर्थ यात्रा है :

"तीरथि नावण जाओ तीरथ नामु है।
तीरथु शबद बीचारु अंतरि ज्ञानु है।"

(धनासरी महल्ला 1, पृष्ठ 687)

गुरु जी ने ताकीद की कि किये हुए पापों से मुक्त होने के लिए तीर्थों के स्नान के लिए दौड़ना व्यर्थ है। गुरु नानक देव जी का जपु जी में फरमान है कि पावन तीर्थों पर स्नान तभी करुँ, जब इस तरह करने से अकाल पुरुख प्रसन्न होता हो। इसका भाव है कि ऐसी रस्में अपने आप में, बगैर सदाचारी जीवन बिताये, अकाल पुरुख की प्रशंसा नहीं जीत सकतीं :

"तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी।
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई।"

(जपुजी, पउड़ी 6)

गुरु जी ने एक और स्थान पर पुण्य कमाने के लिए तीर्थों पर स्नान करने वालों की तुलना उन बर्तनों से की है जिनमें ज़हर भरा हुआ है और केवल वे बाहर से ही धोये जा सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि एक मनुष्य के अन्दर का पाप बाहर वाली रीतियों–रस्मों से दूर नहीं किया जा सकता।

जात–पात और सामाजिक समानता :

उस समय जब श्रेणियों के भेदभाव बहुत हुआ करते थे और जात–पात के सिलसिले की बंदिशों ने भारत में लोगों को बिलकुल बांट रखा था, गुरु नानक देव जी ने समानता और भाईचारे का सबक सिखाया। गुरु जी ने रीतियों–रस्मों, सम्प्रदायों और परम्पराओं, सभी कौमी और नस्ली धर्मों से ऊपर उठकर प्रेम भरे कामों की कल्पना की। उन्होंने प्रेम, त्याग और सेवा के धर्म का प्रचार किया। सिख गुरु साहिबान ने सामाजिक सम्बन्धों और सम्पर्कों को नियमित करने के लिए, मनुष्यों में पूर्ण समानता का मूल नैतिक सिद्धान्त के रूप में ऐलान किया :

गुरु जी ने बताया कि शारीरिक बनावट के तौर पर भिन्न–भिन्न जातियों के मनुष्यों में कोई मूल अन्तर नहीं। कबीर जी ने ब्राह्मणों के साथ एक विवाद के समय पूछा :

"तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध।

(गउड़ी कबीर जी, पृष्ठ 324)

भावार्थ : तू किस तरह ब्राह्मण है और मैं किस तरह शूद्र ? क्या मेरी नसों में लहू है और तेरी नसों में दूध ?

यह उच्च जातियों के तकरार या दावे कि भिन्न–भिन्न जातियों के मनुष्यों में शारीरिक भिन्नता है, की व्यर्थता को नंगा करता है।

गुरु जी बताते हैं कि कुदरत के कानून उच्च जातियों के मनुष्यों पर भिन्न तरह से असर नहीं डालते। क्योंकि कुदरत उच्च जातियों के मनुष्यों के पक्ष में उनकी उत्तमता समझकर कोई भेदभाव नहीं

करती। यह तो साफ दिखाई देता है कि जाति की उत्तमता का ढकोसला मनुष्य का स्वयं का बनाया हुआ है। गुरु जी का फ़रमान है :

"जाती दै किआ हथि सचु परखीयै।
महुरा होवै हथि मरीयै चखीयै।"

(वार माझ, महल्ला 1, पृष्ठ 142)

जात के वश में क्या है ? सच्चाई को परखा जाना है। उच्च जाति का अहंकार ज़हर के समान है। जो भी ज़हर को खायेगा, मर जाएगा।

गुरु जी बड़ी तीव्रता से जाति को एक बेकायदगी और सामाजिक ढीठता समझते हैं, जब वे फरमाते हैं :

"चारे वरन आपै सभु कोई।
ब्रहमु बिंद ते सभ ओपति होई।
माटी ऐक सगल संसारा।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा।
पंच ततु मिलि देही का आकारा।
घटि वधि को करै बीचारा।"

(राग भैरउ महल्ला 3, पृष्ठ 1128)

गुरु जी इस बात को नहीं मानते कि जातियाँ आदि–काल से ही प्रचलित थीं :

"जाति जनमु नही दीसै आखी।
(तब न कहीं कोई ऊँची–नीची जात थी, ना काई किसी जात में जन्म लेता आँखों से दिखाई देता था)
वरन भेख नही ब्रहमण खत्री।"
(तब न कोई ब्राह्मण, खत्री वर्ण थे)

(मारू महल्ला 1, पृष्ठ 1035–36)

गुरु जी ने इस दावे का भी खंडन किया है कि अलग–अलग जातियों के मनुष्य आदि–काल के मनुष्य (अकाल पुरुख) के शरीर के अलग–अलग हिस्सों में से उत्पन्न हुए थे :

"जाति अजाति अजोनी संभउ।
(जात उसकी यह है कि वह जाति रहित है)
घटि घटि जोति सथाई।"
(सब जगह सब हृदयों के अन्दर उसकी ज्योति समाई हुई है)

(सोरठ महल्ला 1, 1–2, पृष्ठ 597)

इस प्रकार गुरु जी ने सामाजिक नैतिक–नियम में जाति रीति को मान्यता देने से इन्कार किया है और इस विचार का खंडन किया है कि अकाल पुरुख ने थोड़े से मनुष्यों को अपने शरीर के ऊपरी हिस्से में से उत्पन्न करके पक्षपात किया है।(ये कुछेक दलीलें थीं जिन्हें ब्राह्मण निचली जातियों से स्वयं को ऊपर रखते हुए, जन्म से ही मिली अपनी श्रेष्ठता के पक्ष में देते थे)।

अन्त में, गुरु जी का विश्वास था कि आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए जाति व्यर्थ है और निम्न जाति के मनुष्यों को मुक्ति पाने के लिए उच्च श्रेणी में जन्म लेने की खातिर प्रतीक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं :

"तुम्हरा जनु जाति अविजाता हरि जपिओ पतित पवीछे।"
(तेरा जन्म अच्छी बुरी किसी भी जाति का हो, तू नाम जपकर पवित्र हो जाएगा)

(बसंत महल्ला 4, पृष्ठ 1178)

दशम पातशाह गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी खालसे में जाति के वर्जित होने की घोषणा की। 'अकाल उस्तत' में उनका फ़रमान है कि "जाति या वर्ण को मानने का कोई विचार नहीं करना।" इसके अलावा भी वे कहते हैं, "मैं किसी धर्म के व्यवहार को ग्रहण नहीं करुँगा। बल्कि अकाल पुरुख से मिले सच्चे प्रेम के बीज बोऊँगा।" खालसा पंथ स्थापित करने से पहले पाँच प्यारे अलग–अलग जातियों के थे। भिन्न–भिन्न

जातियों के भिन्न–भिन्न कर्तव्यों के सिद्धान्त के स्थान पर, सभी मनुष्यों के लिए एक–से नैतिक और धार्मिक कर्तव्य दिए गये। इस प्रकार, सभी मनुष्यों द्वारा खालसा पंथ में स्वतंत्र तौर पर स्वेच्छा से शामिल होने के कारण, मूल समानता को यकीनी बना दिया गया।

सामाजिक समानता :

जातियों के सिलसिले में जन्म की तरह धन–सम्पत्ति भी सामाजिक श्रेणियों में विभाजन का आधार होती है। पर सिख धर्म में धन–सम्पत्ति के अनुसार श्रेणियों के सम्बन्ध समानता के सिद्धान्त पर आधारित हैं। सिख धर्म एक श्रेणी की बेहतर अवस्था के कारण दूसरी श्रेणियों से उत्तम होना स्वीकार नहीं करता। गुरु जी का फ़रमान है :

"ब्रहम ज्ञानी के दषष्टि समानि।
जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान।"

(गउड़ी सुखमनी, महल्ला 5, पृष्ठ 272)

इस प्रकार सिख धर्म में उच्च श्रेणियों के लिए पष्थक नियमावली नहीं है, बल्कि सभी मनुष्य, अमीर या गरीब, एक से न्याय, मूल और सामाजिक दर्जे के हकदार हैं। जिस तरह मौत ऊँच–नीच के फर्क को बराबर कर देती है, गुरु जी इस संकल्प को इस प्रकार प्रगट करते हैं :

"राजे राइ रंक नहीं रहणा आइ जइ जुग चारे।"
(राजा और कंगाल नहीं रहेंगे। वे चारों युगों में आते–जाते रहते हैं)

(रामकली महल्ला 1, पृष्ठ 931)

इसलिए श्रेणी की श्रेष्ठता का ख्याल जगत के बारे में गलत संकल्प पर आधारित है। मनुष्य–गरिमा को, बिना अमीरी–गरीबी का विचार किये, गुरु नानक देव जी की जीवनी में भाई लालो और मलक भागो की साखी में बहुत अच्छे ढंग से दर्शाया गया है। उस साखी में गुरु जी ने मलक भागो के बहुमूल्य पकवानों की अपेक्षा, भाई लालो की रूखी–सूखी रोटी को श्रेष्ठ जानकर स्वीकार किया। इसका अर्थ है कि गरीबों को नीच समझकर उनके साथ ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिए, बल्कि सबके साथ, अमीरी–गरीबी का ख्याल छोड़कर, एक–सा व्यवहार करना आवश्यक है।

स्त्रियों का सम्मान :

भारतीय समाज में स्त्रियों के बारे में दषष्टिकोण सदैव एक जैसा नहीं रहा। अगर कभी स्त्री को बहुत ऊँचा दर्जा दिया गया तो ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रंथों में ऐसी मिसालें भी हैं जब स्त्रियों को घटिया दर्जा दिया गया। सिख धर्म के आरंभ के समय में भारतीय समाज में स्त्रियों को बहुत नीचा दर्जा दिया हुआ था।

सिख धर्म में एक स्त्री को 'भरमाने वाली' या 'पतित करने वाली' या फिर उसे 'एक मशीन' समझना मूर्खता है। गुरु जी 'स्त्री' को शाश्वत आत्मिक सुख के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की राह में एक रुकावट नहीं समझते। इस विचार के कारण गुरु जी त्याग या सन्यास को एक आवश्यक मार्ग के रूप में स्वीकार नहीं करते और गृहस्थ–जीवन जो सत्यवादी ढंग से जिया जाए, को सन्यासी जीवन की अपेक्षा उत्तम मानते हैं। गुरु जी लोगों को इस प्रकार का संकल्प दृढ़ करवाते हुए, इस विचार पर जोर देते हैं कि समाज के हर वर्ग में स्त्री को सम्मानजनक दर्जा दिया जाना चाहिए। गुरु जी ने निश्चयपूर्वक कहा है कि स्त्रियाँ पुरुषों से कदाचित कम नहीं हैं :

"भंडि जम्मीयै भंडि निम्मीयै भंडि मंगणु वीआहु।
भंडहु होवै दोस्ती भंडहु चलै राहु।
भंड मुआ भंडु भालीयै भंडि होवै बंधानु।
सो किउ मंदा आखीयै जितु जम्महि राजान।

भंडहु ही भंडु उपजै भंडै बाझू न कोइ।
नानक भंडै बाहरा ऐको सचा सोइ।"

(आसा की वार, महल्ला 1, पृष्ठ 473)

(अर्थ : भंड– स्त्री, निम्मीयै– गर्भ में पलना, बंधान– संसार के संबंध।)

यह घोषणा स्पष्ट तौर पर दर्शाती है कि सिख धर्म में स्त्री को ऊँचे मान–सम्मान का दर्जा दिया गया। 'महान शूरवीरों की जन्मदाती' स्त्री को मनुष्य जाति की श्रेणीबद्धता में सबसे ऊँचे स्थान पर रखा गया है।

सिखों की आचार–संहिता में अनैतिक रिवाजों से जुड़ी बहुत सारी पाबंदियों का खंडन किया गया हैं, जैसे (1) लड़कियों को मार देना, (2) सति होना, (3) स्त्रियों द्वारा घूंघट निकालना, आदि। भारत में पुरातन काल में आध्यात्मिक अधिकार के साथ कहा जाता था कि एक नेक स्त्री का अपने पति की चिता में बैठकर जल मरना ही एक उत्तम मार्ग है, ऐसी स्त्री न केवल स्वर्ग में अपने पति के साथ शाश्वत सुख प्राप्त करेगी, बल्कि उसका यह कर्तव्य उसके पति के परिवार की तीन पीढ़ियों (उसके माता–पिता, दोनों पक्षों से) के पाप धो डालेगा।[2]

गुरु अमरदास जी ने सतिप्रथा के विरुद्ध बड़ा जोरदार संघर्ष चलाया और उसके माध्यम से स्त्रियों को इस सामाजिक अत्याचार और धार्मिक निर्दयता से छुटकारा दिलवाया । गुरु जी ने घोषणा की कि :

"भी सो सतीया जाणीअनि सील संतोखि रहंनि।
सेवनि साई आपणा नित उठि सम्हालंनि।"

(राग सूही, श्लोक महल्ला 3, पृष्ठ 787)

एक सबसे बड़ा सुधार था – स्त्रियों को बंधनों से मुक्ति दिलाना। गुरु जी के उपदेशों के माध्यम से बहुत सारी स्त्रियों को छुटकारा मिल गया। सिख धर्म में विधवा विवाह की भी छूट है, जिससे एक विधवा यदि चाहे तो फिर से बस सकती है।

संगत और पंगत की संस्थाएँ :

संगत – धर्मात्मा लोगों का समाज :

संगत का अर्थ है –इकट्ठा होना या मिलकर बैठना। लेकिन, सिख धर्म में संगत को आम तौर पर 'सत्संगत' कहा जाता है अर्थात पवित्र सभा। जिसका भाव है– सच का घर, जहाँ लोग अकाल पुरुख के साथ प्रेम करते हैं और उसमें लीन होना सीखते हैं :

"सतसंगति कैसी जाणीयै।
जिथे ऐको नामु वखाणीयै।"

(सिरी राग महल्ला 1, पृष्ठ 72)

फिर चौथे पातशाह गुरु रामदास जी भी संगत के लक्षण बताते हैं :

"सतसंगति सतिगुर धन्नु धन्नो धन्न धनो जित मिलि हरि बुलग बुलोगीया।"

(वार कानड़ा, महल्ला 4, पृष्ठ 1313)

भाव : सत्संगति सच्चे गुरु की पाठशाला है जहाँ हम अकाल पुरुख के साथ प्रेम करना और उसकी महानता की पूजा–स्तुति करना सीखते हैं।

गुरु नानक देव जी ने संगतों(धार्मिक सभाओं) की स्थापना को बहुत अधिक महत्व दिया और जहाँ–जहाँ भी वे गये, उन्होंने संगत की स्थापना करने का यत्न किया। गुरबाणी और सत्संगति ही केवल दो साधन थे, जिन्हें गुरु जी ने लोगों को खुदगर्जी(स्वार्थ बुद्धि) और बुरी लालसाओं से दूर करने और अन्त में, उनसे मुक्ति दिलाने और अकाल पुरुख के साथ उन्हें जोड़ने के लिए प्रयोग किया :

"सतसंगति नामु निधानु है जिथहु हरि पाया।
गुरपरसादी घटि चानणा आन्हेरु गवाया।"

(सारंग की वार, महल्ला 4, पृष्ठ 1244)

यह एक अच्छा माना हुआ तथ्य है कि बिना परमात्मा पुरुषों की संगत किये आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। सत्संगति अहंकार का नाश करने का साधन है और बुरी लालसाओं से छुटकारा पाने में सहायक होती है :

"जनम जनम दी हउमै मलु लागी मिलि संगति मलु लहि जावैगो।
जिउ लोहा तरिओ संगि कासट लगि सबदि गुरू हरि पावैगो।"

(कानड़ा महल्ला 4, पृष्ठ 1309)

"ऐ साजन कछु ककहु उपाया।
जा ते तरउ बिखम इह माया।
कहि किरपा सतसंगि मिलाए।
नानक ता कै निकटि न माए।"

(बावन अक्खरी महल्ला 5, पृष्ठ 251)

जहाँ–जहाँ भी गुरु नानक देव जी गये, सिखों ने गुरद्वारा बनाया और वहाँ हर रोज मिलकर बैठा करते और बाकायदा संगत कायम कर लेते। तीसरे पातशाह गुरु अमरदास जी के समय से यह अनुभव हुआ कि सिखों के पास अपने धर्म स्थान होने चाहिएँ। उन्होंने चक्क रामदास नगर की नींव रखी, जिसका बाद में जाकर वर्तमान नाम अमृतसर पड़ा, और गुरु जी ने गोइंदवाल में एक बावड़ी भी बनवाई। चौथे और पाँचवे गुरु साहिबान ने भी अपने सिखों के वास्ते नये धार्मिक केन्द्र स्थापित करने में बहुत ही दिलचस्पी दिखाई, जैसे अमृतसर, करतारपुर, आदि शहर। ये धार्मिक केन्द्र विकास कर रहे सिख समाज को पक्के तौर पर संगठित करने के लिए बहुत बड़े साधन बन गये। दूर–पास से सिख संगतें इन केन्द्रों की यात्रा करने के लिए आतीं, जिसके माध्यम से उनको न केवल पावन गुरु जी के दर्शन करने और उनकी मेहर प्राप्त करने का अवसर मिलता, बल्कि एक दूसरे से निकटतम सम्पर्क भी हो जाता। यात्रा पर आये गुरसिखो को मुफ्त रिहाइश और भोजन दिये जाते। इनके नित्यकर्म में सुमिरन और सेवा, दो प्रमुख व्यस्तताएँ थीं। इनके निकटतम सम्पर्क एक भलीभांति रूप में संगठित सिख जत्थेबंदी का आधार बने।

सिख धर्म को संगठित करने के कार्य के साथ–साथ इसके अनुयायिओं की गिनती में वृद्धि भी होती गयी। गुरु अमरदास जी के समय बाइस 'मंजियाँ' और बावन 'पीढ़ियाँ' थीं, जो देश में सिख धर्म के प्रचार के बड़े–छोटे केन्द्र के रूप में काम करती थीं। चौथे पातशाह, गुरु रामदास जी ने प्रचारकों का एक नया सिलसिला आरंभ किया, जिन्हें 'मसन्द' कहा जाता था। इस नये सिलसिले को पाँचवे गुरु जी ने फिर से संगठित और विस्तारित किया। देश में नई सिख संगतों की संख्या और बड़ी हो जाने के कारण सिख धर्म में प्रवेश करने के लिए चरन–पाहुल(चरणामृत) की मर्यादा, नियत किये गये प्रचारकों के माध्यम से आरंभ कर दी गयी। यद्यपि आदर्श चरन–पाहुल की मर्यादा स्वयं गुरु जी के माध्यम से होती थी, पर क्योंकि गुरु जी का सब जगह पहुँचना सम्भव नहीं था, इसका अधिकार स्थानीय प्रचारकों को सौंपा गया। इन यत्नों के फलस्वरूप सिक्खी में प्रवेश किये लोगों में अधिक संख्या व्यापारिक श्रेणियों के लोगों की थी, जो अधिकतर शहरों में बसते थे। गुरु अर्जन देव जी के समय यह लहर ग्रामीण इलाकों में भी लोकप्रिय हो गयी, जिसके साथ बहुत भारी संख्या में माझे के जट्टों ने सिख धर्म को अपना लिया।

किसी शहर की सफलता के लिए आर्थिक साधन सबसे अधिक ज़रूरी होते हैं। शुरू में श्रद्धालुओं की ओर से अपने आप आई हुई भेंटें(उपहार आदि) काफी थीं। पर जब बड़ी योजनाएँ हाथ में ली गयीं तो प्रचलित साधन काफी नहीं थे। सो, इस स्थिति से निबटने के लिए मसन्दों की जिम्मेदारी को केवल सिख धर्म के उपदेशों का प्रचार करने तक ही सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उन पर यह जिम्मेदारी भी सौंप दी गयी कि वे श्रद्धालुओं से भेंटें एकत्र कर उन्हें गुरु जी के प्रमुख स्थान पर पहुँचाएँ।

बिलकुल आरंभ में सिख संगत, श्रद्धालुओं की केवल एक धार्मिक सभा ही थी जो थोड़ा बहुत अलग रहकर अपने कार्य किया करती थी। धीरे–धीरे इसके कार्यों में वषद्धि होती गयी। गुरबाणी की प्रतियाँ तैयार करना, कुछ धार्मिक केन्द्रों का निर्माण करना, मंजियों और मसन्दों के केन्द्रीय नेतष्त्व के अधीन एजेंसियों के तौर पर संस्थान और गुरु जी की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को दृढ़ करना, ये सभी पक्ष, एक को दूजे से जोड़ने के लिए साझी कड़ियाँ थे। इसलिए एक–दूसरे से अलग रहना कम हो गया। यह लहर निरन्तर चलते हुए खालसा की स्थापना तक पहुँची, जिसका लक्ष्य भक्ति और शक्ति, नैतिक और

आध्यात्मिक श्रेष्ठता और सर्वोच्च दर्जे की अच्छी बहादुरी अर्थात शूरवीरता के आदर्शों का एक अच्छा संतुलित सम्मिश्रण था। परम ज्योति में समाने से एक दिन पहले गुरु गोबिंद सिंह जी ने ऐतिहासिक घोषणा की, जिसके द्वारा व्यक्तिगत गुरु की श्रृंखला को समाप्त कर दिया गया और सोच–विचार का अधिकार खालसे को प्रदान किया गया। खालसे की स्थापना से अर्द्ध–संगठित संगतों का ताना–बाना पूरी तरह संगठित हो गया। खालसे को सर्वोच्चता की बख्शीश के साथ करीब ढाई सदियों की लम्बी प्रक्रिया सम्पूर्ण हुई।

कोई भी व्यक्ति जाति, मत और देश के भेदभाव के विचार की परवाह किये बिना संगत में प्रवेश कर सकता है। सिख या गैर सिख श्रद्धालू पूजा पाठ आदि सारे कार्य कर सकता है, सिवाय अमृत छकाने के कार्यों के, जो केवल स्थापित खालसा, जिसने सिख धर्म के आदर्शों के अनुसार जीवन बनाया हो, ही कर सकता है। संगत, भजन–बंदगी करने वालों का केवल समूह मात्र नहीं है, ना ही यह अपनी मुक्ति और सुख–आनन्द पाने की जगह है, बल्कि यह तो पूर्ण तौर पर संगत में आये व्यक्तियों और समाज के जीवन को एक सृजनात्मक उद्देश्यपूर्ण नई दिशा देने का समर्थन करती आई है। संगत का महत्व इतना ऊँचा गिना गया है कि गुरु जी स्वयं भी संगत के फैसलों को स्वीकार करते थे। गुरु अर्जन देव जी ने अपने सुपुत्र का विवाह चन्दू की सुपुत्री के साथ करने से इन्कार कर दिया था क्योंकि संगत ने इस नाते के विरुद्ध फैसला दिया था। संगत आकार में छोटी हो सकती है, पर सम्पूर्ण तौर पर इसे पंथ का नाम दिया गया है।

पंगत – गुरु का लंगर :

दूसरी संस्था– पंगत अर्थात लंगर, संगत की संस्था के लगभग साथ–साथ ही स्थापित हुई थी। इसका आरंभ गुरु नानक देव जी ने किया और इसमें पक्के तौर पर इजाफे का कार्य तीसरे पातशाह गुरु अमरदास जी ने किया था। लंगर के नियमों के अनुसार सबको एक ही पंगत में बैठकर एक ही भोजन छकना है और ऊँच या नीच, अमीर या गरीब और राजा या किसान का कोई भेदभाव नहीं होगा। गुरु अमरदास जी का हुक्म था कि कोई भी लंगर छके बिना उनके दर्शन नहीं कर सकेगा। जब हरीपुर का राजा या बादशाह अकबर भी गुरु जी से मिलने के लिए आये, उन्हें भी आम लोगों के साथ एक ही पंगत में बैठकर इकट्ठा भोजन छकना पड़ा, तब ही गुरु जी ने उनको दर्शन देना स्वीकार किया। इस प्रकार लोगों को अपने सामाजिक भ्रम त्याग देने के लिए तैयार किया। लंगर की संस्था ने सामाजिक संगठन का साधन बनने का कार्य किया।

पंगत की संस्था ने संगत को एक धर्म–निरपेक्षता का पक्ष भी प्रदान किया। सबसे अधिक महत्व वाली अवस्था यह थी कि इसके द्वारा गुरबाणी के सिद्धान्त को अमल में लाया गया था और यह सिख धर्म के अनुयायिओं को पक्के तौर पर जोड़ने का साधन भी बनी। यह संस्था छुआछूत की अनैतिक रीति के विरुद्ध सुरक्षा भी प्रदान करती है।

यह संस्था किसी खास व्यक्ति या श्रेणी की सहायता से नहीं, बल्कि सबके योगदान से चलाई जाती है। लंगर, जहाँ राजा और किसान एक साथ परशादा छकते हैं, ने एक बड़े स्तर का परोपकार का विचार उत्पन्न किया और सबको जोड़ने का शक्तिशाली साधन बना।

सर्व–व्यापक भाईचारा :

सामाजिक समानता का आदर्श सिख–धर्म की नैतिकता का अन्तिम उद्देश्य नहीं। बराबरी एक–दूसरे के साथ प्रेम या आदर महसूस किये बिना भी कायम रखी जा सकती है, पर ऐसी खाली बराबरी काफी नहीं होगी, क्योंकि यह मानववादी सदाचार के आदर्श के अनुसार नहीं है। सो, सम्पूर्ण समानता बनाने के लिए यह मनुष्यता की आत्मिक समरूपता के विचार से भरपूर होनी चाहिए। गुरु जी का फरमान है :

"जैसे ऐक आग ते कनूका कोट आग उठे

नियारे हुइ कै फेरि आग मैं मिलाहिगे।
जैसे ऐक धुर ते अनेक धूर पूरत है।
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिगे।
जैसे ऐक नद ते तरंग कोट उपजत है
पान के तरंग सबै पान ही कहाहिगे।
तैसे बिसु रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ
ताही ते उपज सभै ताही मै समाहिगे।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी, अकाल उस्तत)

इसका भाव है कि हरेक मनुष्य के साथ एक ही मानव भाईचारे का अंश होने के नाते व्यवहार करना हरेक मनुष्य का हक है। कोई साथी मनुष्य 'दूसरा' नहीं होता। गुरु जी का वचन है :

"गुर मिल तिआगिओ दूजा भाउ।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1148)

असल में, दूसरा मनुख 'दूसरा' नहीं बल्कि एक ही समय से उपजा सहयोगी है और उसी आत्मिक सिलसिले का हिस्सा है। मनुष्यता के भाईचारे का भाव इस प्रकार पारिवारिक, सामाजिक या राष्ट्रीय बंधुत्व से कहीं अधिक गहरे संबंधों से जुड़ा हुआ है। गुरु जी ने मनुष्य जाति के इस भ्रातष्त्व भाव पर, एक ही पिता के बालक होने के विचार द्वारा भी जोर दिया है :

"तूं साझा साहिबु बापु हमारा। कृ.
सभे साझीवाल सदाइनि तूं किसै न दिसहि बाहरा जीउ।"

(माझ महल्ला 5, पृष्ठ 97)

गुरु जी सांसारिक जीवन के साझे संबंधों की ओर संकेत करते हैं :

"पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।
दिवसु राति दुइ दाई दाइया खेलै सगल जगतु।"

(जपु जी, श्लोक, पृष्ठ 8)

गुरु जी के अनुसार भ्रातृत्व भाव एक सच्चाई है, पर अहंकार के पर्दे के नीचे हमसे छुपी हुई है। अहंकार मनुष्य के मन पर जन्म–जन्मान्तरों से लगी हुई मैल है। जब भी यह मैल दूर की जाती है, अहंकार का पर्दा ढह जाता है, सारी मनुष्यता के बीच का संबंध निर्मल सचाई बन जाता है। जब तक हमारे मन अहंकार के पर्दे के नीचे रहेंगे, हमारी समझ खोखली और सचाई से दूर रहेगी। हम मन को कैसे साफ करें ?

जैसा कि पहले जिक्र किया गया है, गुरु जी मन को साफ करने का राह बताते हैं :

"मन ते धोखा ता लहै जा सिफति करी अरदासि।"

(वडहंस महल्ला 1, पृष्ठ 557)

एक बार मन निर्मल हो जाता है, तब यह एक आध्यात्मिक ऊँचाई प्राप्त कर लेता है, जहाँ सचाई स्पष्ट हो जाती है और हमारा भ्रम दूर हो जाता है और उस समय सर्व–व्यापक भ्रातष्त्व भाव छा जाता है :

"ऐकु पिता ऐकस के हम बारिक तू मेरा गुर हाई।"

(सोरठि महल्ला 5, पृष्ठ 611)

"न हम हिंदू न मुसलमान।
अलह राम के पिंड परान।"

(भैरउ महल्ला 5, पृष्ठ 1136)

"ऐ नेत्रहु मेरिह हरि तुम महि जोति धरी
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई।
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी रहि निहालिया।
ऐहु विसु संसारु तुम देखदे ऐहु हरि का रूपु
है हर रूपु नदरी आया।
गुरपरसादी बुझिया जा वेखा हरि इकु है हरि बिनु अवरु न कोई।

कहै नानकु ऐहि नेत्र अंध से सतिगुरि मिलियै दिब दृष्टि होई।"

(रामकली महल्ला 3, अनंद, पृष्ठ 922)

गुरु की कृपा से अगर एक बार हमारा हृदय दैवी–प्रकाश से भर जाता है तो कोई 'दूसरा' नहीं, कोई वैर नहीं, कोई नफ़रत नहीं रहती, बल्कि यह सबकुछ परोपकारी और मनुष्य जाति के भ्रातष्त्व भाव के लिए सेवा होती है। इस अवस्था के अनुभव के लिए भाई घनैया की मिसाल है। जंग में भाई घनैया प्यासों को पानी पिलाने के लिए नियुक्त था। जब देखा कि सिखों के साथ–साथ हिंदुओं और मुसलमानों को भी वह उसी तरह पानी पिला रहा है, तो सिखों ने गुरु जी के सम्मुख शिकायत की कि भाई घनैया शत्रु की फौजों को भी पानी पिला रहा है, जो पानी पीने के बाद सचेत होकर फिर से सिखों के विरुद्ध लड़ने लग जाते हैं। गुरु जी ने भाई घनैया को बुलाकर पूछा। भाई घनैया ने उत्तर दिया, "सच्चे पातशाह, मुझे तो दिखाई नहीं देता कि कौन मित्र है और कौन शत्रु। मुझे तो सबमें एक ही रूप दिखाई देता है। सो, मैं सभी को आपके ही सिख समझकर पानी पिलाये जाता हूँ।"

गुरु जी ने मन की ऐसी अवस्था धारण करने का हुक्म दिया हुआ है, जब मन धर्म, रंग, नस्ल या कौन के पक्षपात से ऊँचा हो जाता है और सच्चा सर्वव्यापक भ्रातष्त्व भाव उपजता है :

"ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।"

(कानड़ा महल्ला 5, पृष्ठ 1299)

सिख धर्म इसमें विश्वास रखता है, इसकी हामी भरता है और इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए अमली उपाय करता है। सिख इतिहास में इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कई उदाहरण हैं।

गुरु नानक देव जी ने चौदह वर्ष पैदल यात्रा की और भारत के पूर्व में आसाम की पहाड़ियों से लेकर पश्चिम में ईरान और ईराक तक दूर का इलाका और उत्तर में तिब्बत से लेकर दक्खिन में श्रीलंका तक का विशाल इलाका तय किया। इस लम्बे सफ़र के दौरान गुरु जी हिंदुओं के कई प्रमुख तीर्थों और विद्या केन्द्रों, सिद्धों के मठों और मुसलमानों के मक्के सहित भिन्न–भिन्न केन्द्रों पर गये और दैवी सन्देश (मनुष्य जाति का भाई–भाई होना और अकाल पुरुख का सबका पिता होना), जिसके लिए वह संसार में आये थे, दिया। गुरु जी ने किसी को भी नहीं कहा कि स्वर्ग में जाने के लिए मेरे सिख बन जाओ। उन्होंने ने तो बल्कि सारी मनुष्य–जाति को गारंटी दी कि अगर एक मनुष्य, नस्ल, रंग, जाति, धर्म, लिंग, मत या कौमीअत की परवाह न करके, अकाल पुरुख, एक निरंकार का सुमिरन करे तो उसकी मुक्ति अवश्य होगी :

"जो जो जपै सु होइ पुनीत।
भगति भाइ लावै मन हीत।"

(गउड़ी सुखमनी, महल्ला 5, पृष्ठ 290)

सिख धर्म शाब्दिक और वास्तविक भाव में पूरी तरह सर्वव्यापी भाईचारे के पक्ष में खड़ा होता है। हरेक सिख जो जगत के किसी कोने में भी रह रहा हो, जब सवेरे और संध्या के समय अरदास करता है तो अन्त में यही कहता है कि "**तेरे भाणे सरबत का भला।**"

गुरु साहिबान की तस्वीरें :

कुछ चित्रकारों ने सभी गुरु साहिबान की काल्पनिक तस्वीरें बनाई हैं। इन चित्रकारों ने कभी गुरु साहिबान को देखा है ? ये तस्वीरें तकरीबन सभी गुरद्वारों और अधिकतर घरों में टंगी हुई दिखाई देती हैं। दुर्भाग्य से बहुत सारे सिख इन तस्वीरों पर फूलों के हार चढ़ाते हैं और इनके आगे धूप जलाते हैं। क्या ये मूर्ति (तस्वीर) पूजा नहीं ? इसे हम गुरमत कैसे कह सकते हैं ? औरंगजेब को लिखे पत्र, जफ़रनामा में गुरु गोबिंद सिंह जी ने पहाड़ी राजाओं के संबंध में जिक्र किया है कि "ये मूर्तियों को पूजते थे और मैं मूर्तियाँ तोड़ने वाला (इस्लाम में बुत–शिकन की तरह) था। जब गुरु जी मूर्तियाँ तोड़ने वाले थे, उनके नाम के सिख अब मूर्तियों (तस्वीरों) को पूजने वाले कैसे बन गये हैं ?

गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु गोबिंद सिंह जी तक जोर केवल एक अकाल पुरुख, निराकार की पूजा के लिए दिया गया और उन्होंने मूर्तियों, मसानो(श्मशानों), समाधियों, कब्रों आदि की पूजा करने से

सख्त मनाही की थी। तस्वीरों को पूजने वाले ये सिख अपने पक्ष की पुष्टि के लिए गुरबाणी की इन तुकों की ओर संकेत करते हैं :

"गुर की मूरति मन महि धिआनु।"

(गौड महल्ला 5, पृष्ठ 864)

"सतिगुर की मूरति हिरदै वसाये।"

(धनासरी महल्ला 1, पृष्ठ 661)

गुरु क्या है और गुरु की मूर्ति (तस्वीर) क्या है ?

जैसे इस पुस्तक में पहले वर्णन कर चुके हैं, गुरबाणी के अनुसार गुरु शरीर (देह) नहीं है, गुरु ज्योति { दैवी प्रकाश है और गुरु की मूर्ति (तस्वीर)} दैवी शबद अर्थात् गुरबाणी है :

"जोति रूप हरि आपि गुरू नानकु करायउ।"

(भट्टा दे सवैये, पृष्ठ 1408)

गुरमत समझाती है कि सच्चा गुरु मनुष्य का शरीर नहीं, और इसलिए शरीर (देह) को किसी भी तरह की पूजा करने के योग्य नहीं समझा जाता :

"सतिगुरु निरंजनु सोइ।
मानुख का करि रूपु न जानु।"

(रामकली महल्ला 5, पृष्ठ 894)

इसलिए "गुर की मूरति मन महि धिआन" का अर्थ साफ तौर पर गुरु की तस्वीर की पूजा करना नहीं, बल्कि 'शबद' के भाव में ध्यान करना है। गुरबाणी इस बात की पुष्टि करती है कि गुरु के मनुष्य रूपी शरीर के दर्शन करके मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती :

"सतिगुर नो सभु को वेखदा जेता जगतु संसारु।
डिठै मुकति न होवई जिचरु सबदि न करे वीचारु।"

(श्लोक महल्ला 3, पृष्ठ 594)

अगर गुरु जी के शरीर के दर्शन करने से मनुष्य को मुक्ति मिल सकती है तो महता कालू जी अपने सुपुत्र गुरु नानक जी को थप्पड़ न मारते। महता जी ने गुरु जी के दर्शन किये हुए थे, सो उनकी मुक्ति हो जानी चाहिए थी। बल्कि इतिहास में तो लिखा गया है कि महता कालू जी अपने सुपुत्र में दैवी प्रकाश नहीं देख सके और उसे मारते रहे। अगर गुरु जी के शरीर के दर्शन करने मात्र से ही मुक्ति प्राप्त हो जाती तो गुरु जी के दोनों सुपुत्र –श्री चंद और लख्मी दास, अपने पिता गुरु जी के हुक्म को मानने से इन्कार नहीं करते। जल्लाद, जो गुरु अर्जन देव जी के नंगे शरीर पर गरम रेता डाल रहा था, वह ऐसा न करता क्योंकि उसे गुरु जी के दर्शन करके मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए थी। जल्लाद गुरु तेग बहादुर जी का शीश न काटता क्योंकि उसने गुरु जी के दर्शन किये थे।

इसलिए, जब 'गुरु–ज्योति' मानव शरीर में समायी हो, तब भी गुरु जी की देह का केवल दर्शन कर लेना किसी को भी मुक्ति प्रदान नहीं कर सकता, तब ये ख़याली (झूठी) तस्वीरें हमारी मुक्ति कैसे करा सकती हैं ? ये हमें गुरमत के सच्चे राह से केवल भटका ही सकती हैं।

गुरु गोबिंद सिंह जी 'तव प्रसादि सवय्यां' में वर्णन करते हैं कि जो बुतों (मूर्तियों) की पूजा करते हैं, वे पशु के समान हैं :

"काहूं लै पाहन पूजा धरयो सिर काहुं मै लिंग गरे लटकायो।
काहू लखियो हरि अवाची दिसा महि काहू पछाह को सीस निवाइओ।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ मृतान को पूजन धाइओ।
कूर क्रिया उरझयो सभ हीजग श्री भगवान को भेद न पाइओ।"

(गुरु गोबिंद सिंह जी, अमृत दे सवैये)

कुछ सिख गुरु जी की तस्वीर वाली जंजीरें(मालायें) भी गलों में पहने घूमते हैं। क्या यह गुरमति है अर्थात सिख धर्म के नियमों को मानना है ? यह बिलकुल मनमत है अर्थात गुरु और धर्म–ग्रंथों के विरुद्ध है। खालसा जी, जागो और विचार करो। गुरु मूर्ति (बुत) नहीं। गुरु तस्वीर नहीं। परम ज्योति में समाने के बाद गुरु नानक जी का शरीर किसी को ढूँढ़े नहीं मिल सका। सो गुरु 'ज्योति' है। गुरु 'दैवी प्रकाश' है।

गुरु सर्वव्यापी दैवी आत्मा है। गुरु गुरबाणी है, गुरु साहिबान की झूठी और ख़याली तस्वीरों को फूलों आदि के सेहरे पहनाना गुरमत के बिलकुल अर्थात पूर्ण तौर पर विरुद्ध है। हम गुरु जी के उपदेश के ही विरुद्ध चलकर गुरु जी की कृपा कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

निराकार पूर्ण पारब्रह्म एक मूर्ति के रूप में अंकित नहीं किया जा सकता। उसका कोई रूप नहीं। सो, वह चिह्नों के द्वारा दर्शाया नहीं जा सकता है। ऐसे काम अपने आप में गुरु जी की सम्मति नहीं जीत सकते। गुरु जी के आदेशों को पूर्ण तौर पर जीवन का आधार बनाये बिना सिख धर्म मूढ़ सिद्धान्तों, निरर्थक रीतियों और रिवाजी कर्मकांडों के ढेर के नीचे गहरे दब जाएगा।

सिख धर्म एक कट्टरपन नहीं, बल्कि गुरु रहित मर्यादा(आचार संहिता) के अनुसार जीवन जीने का एक ढंग है। एक सिख अपने रोजाना जीवन में गुरु के शबद को सर्वोत्तम स्थान देता है। अपने जीवन में अकाल पुरुख का यश गाने और उसको दिल में बसाये बगैर यह जीवन भ्रष्ट हो जाएगा और इसकी हालत दुखदायक हो जाएगी, जिससे आत्मिक गिरावट उपजेगी। सिख आचरण की उच्च अवस्था के लिए 'नाम' पर गहरा और निरंतर ध्यान लगाने की आवश्यकता है। 'नाम' न एक फलसफा है और ना ही पुस्तकों में से लेने वाला ज्ञान है। यह अपने अन्दर है और अन्दर से ही प्राप्त होता है, सच्चे गुरु की बाणी (गुरबाणी) की मेहर के द्वारा। आओ इस शबद को अपनी रोज की याचना बनाएँ :

"मेरे मीत गुरदेव मोकउ राम नामु परगासि।
गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई हरि कीरति हमरी रहरासि।"
(राग गूजरी महल्ला 4, पृष्ठ 10)

पुस्तक सूची

पंजाबी :

1. गुरु ग्रंथ साहिब
2. भाई गुरदास– वारां
3. भाई वीर सिंह–संथिया गुरु ग्रंथ साहिब
4. डा. करतार सिंह – सिख सिद्धान्त
5. प्रो. साहिब सिंह– गुरु साहिबान के जीवन बिरतांत

ENGLISH :

6. Archer, John Clark- The Sikhs
7. Avtar Singh- Ethics of the Sikhs
8. Gandhi, Surjeet Singh- History of the Sikh Gurus
9. Harbans Singh- Perspectives on Guru Nanak
10. Kohli S.S. – Outline of Sikh Thought
11. Macauliffe, M.A. – The Sikh Religion Vol.1-6
12. Ranbir Singh- Glimpses of the Divine Masters
13. Ranbir Singh- The Sikh Way of Life
14. Sikhism- Fauja Singh, Trilochan Singh, Gurbachan Singh Talib, J.P. Singh Oberoi, Sohan Singh.